International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 144-146

अज्ञेय की कविता में परम्परा

सोनदीप

शोधार्थी, पी.एच.डी. हिन्दी शोध केन्द्र, एस.सी.डी. राजकीय महाविद्यालय, लुधियाना पंजाब, भारत।

प्रस्तावना

अज्ञेय की कविता हिन्दी कविता को एक ऐसा मोड़ देती है, जहाँ से हिन्दी की नयी कविता की शुरूआत होती है। उनके साहित्य लेखन से हिन्दी में दूसरी आधुनिकता की शुरूआत माना जाना चाहिए क्योंकि उन्होंने साहित्य के विविध विधाओं की परम्परा को न सिर्फ बदलने का सफल प्रयास किया बल्कि भावी साहित्य को एक प्रयोगशील दृष्टि भी दी। उनकी प्रयोगशील दृष्टि ने हिन्दी कविता और साहित्य की अन्य विधाओं को आधुनिक परिप्रेक्ष्य से जुड़ना सिखाया। उनकी कविता ने भारतीय परम्परा के गतिशील तत्त्वों को पहचाना और उनका बुद्धिमानीपूर्वक उपयोग भी किया परन्तु उनकी दृष्टि सदैव आगे देखने की ही रही। "छायावादोत्तर सृजन में शायद ही कोई रचनाकार अज्ञेय जैसा 'विद्रोही स्वभाव' लेकर सामने आया हो। काव्य–भाषा, साहित्य, परंपरा, आधुनिकता, व्यक्ति–स्वातंत्र्य, संस्कृति, आधुनिक भाव–बोध के संबंध में पारंपरिक अवधारणाओं का मूर्त्ति–भंजन उनकी प्रकृति का अंग रहा है। परंपरागत मूल्यों को तोड़ने–छोड़ने के साथ उन्होंने नए मूल्यों को स्थापित करने वाली 'दृष्टि' को विकसित किया है। वे इस तरह के कार्यों में आनंद का अनुभव करते रहे और बहुधा चिंतन के उच्चतम बिंदुओं को छूने का अहसास कराते रहे।"[1] अज्ञेय की प्रयोगशील दृष्टि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बदलते हुए जीवन और जीवन मूल्यों की स्पष्ट पहचान कराती है। उनकी कविता अतीत को वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में ही इस्तेमाल करती है। वे आधुनिक होने के लिए अपनी परम्परा से जुड़ना आवश्यक मानते हैं। यही कारण है कि उनकी कविता में भारतीय परम्परा के प्रमुख स्वर दिखाई पड़ते हैं।

परम्परा अज्ञेय की कविता की एक प्रमुख समस्या है। वस्तुतः वे एक आधुनिक कवि हैं इसलिए परम्परा उनके लिए या उनके रचनाकार्य के लिए एक समस्या बनती है। इसका कारण यह है कि आज के परिवेश में परम्परा परस्पर विरोधी भूमिका निभाती हुई प्रतीत होती है। परम्परा कहीं कवि को बल प्रदान करता है तो कहीं उसके मार्ग मे अवरोध उत्पन्न करता है। यह स्थिति अज्ञेय जैसे आधुनिक कवि के लिए समस्या ही है संभवतः तभी वे इस विषय में कहते हैं कि ''आधुनिक साहित्यकार को मानना पड़ता है कि चाहे या न चाहे, उसे अतीत द्वारा, रूढ़ि द्वारा उतना ही नियमित होना पड़ता है जितना वह स्वयं उसे परिवर्तित अथवा परिवर्धित करता है। निस्सन्देह ऐसा ज्ञान आधुनिक साहित्यकार के उत्तरदायित्व को बहुत बढ़ा देता है। बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि इससे साहित्य–रचना में कठिनाइयाँ भी उत्पन्न होती हैं। क्योंकि इससे लेखक में यह चेतना उत्पन्न होती है कि एक विशेष अर्थ में वह अतीत द्वारा झोखा जा रहा है, उसके आगे परीक्षार्थी है।'' कहने का अभिप्राय यह कि एक आधुनिक रचनाकार के लिए परम्परा की अवधारणा के स्तर को समझना तथा वर्तमान स्थिति में सर्जना के स्तर पर उससे निबहना आवश्यक है।

"एक आधुनिक लेखक होने के कारण अज्ञेय अपने देश की अनेक विलुप्त, उपेक्षित, विस्मृत शब्द और अर्थ की परंपराओं में उतरते हैं। उनके लिए 'भारत' और 'भारतीयता' से संदर्भित अनेक परंपराएँ अतीत भले ही हों, अनुपस्थित नहीं हैं। सामूहिक स्मृति, सामूहिक अवचेतन, आद्य–बिंब, प्राक्–स्मृतियाँ उनकी चेतना में उसी तरह उठा–पटक करती रहती हैं, जिस तरह प्रकृति, परंपरा, धर्म, ईश्वर, आत्मा–अनात्म, अस्तित्व, इतिहास, भूगोल की छायाएँ उनकी कवि–चेतना पर झूलती रहती हैं।"[2] स्वयं को एक आधुनिक कवि का परिचय देते अज्ञेय परम्परा के उन गतिशील तत्त्वों को स्वीकार करते हैं जो उनके लिए मूल्यवान होने के साथ–साथ दिशा–निर्देश करने वाले हैं। वे परम्परा को वहीं तक स्वीकार करते हैं जहाँ तक वह व्यक्तित्व–निर्माण में सहयोगी होती है। जहाँ वह उनका निजत्व अर्थात् उनकी पहचान छीनने का प्रयास करती है वहाँ अज्ञेय उसे नकार देते हैं। वे परम्परा के विशाल प्रवाह में नहीं बहना चाहते हैं क्योंकि उन्हें यह पता है कि ''हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।''[3] प्रयोग की यह अवधारणा कवि की अधिकांश रचनाओं में देखी जा सकती है। यही कारण वे कहते हैं– ''किन्तु हम हैं द्वीप/हम धारा नहीं हैं/स्थिर समर्पण है हमारा/ हम सदा से द्वीप हैं स्रोतवाहिनी के/किन्तु हम बहते नहीं हैं/क्योंकि बहना रेत होना है/हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं/पैर उखड़ेंगे/पलवन होगा, ढहेंगे, सहेंगे, वह जायेंगे/और फिर हम चूर्ण होकर भी/कभी क्या धार बन सकते?/रेत बनकर हम सलिल को तनिक गंदला ही करेंगे/अनुपयोगी ही बनायेंगे।''[4] यहाँ कवि परम्परा को तो स्वीकार करता है परन्तु वह उसके अंधानुकरण का त्याग करता प्रतीत होता है। क्योंकि उसे यह बोध है कि परम्परा के अंधानुकरण से उसका अस्तित्व उसकी पहचान खतरे में पड़ सकती है। अर्थात् परम्परा का अंधानुकरण करना स्वयं को समाप्त कर देना है, द्वीप से रेत हो जाना है। इस संबंध में कवि अपनी मान्यता स्पष्ट करता हुआ कहता है– ''हम नदी के द्वीप हैं/हम नहीं कहते/कि हम का छोड़कर स्रोतवाहिनी बह जाए/वह हमें आकार देती है/हमारे कोण, गलियां, अन्तरीय, उभार, सैकत कूल/सब गोलाइयाँ उस की गढ़ी हैं/माँ है वह/है, इसी से हम बने हैं।''[5] अर्थात् जिस प्रकार द्वीप नदी की जलराशि को बीच में स्थित होकर अपना रूप–स्वरूप, आकार ग्रहण करता है, उसी प्रकार कवि भी अपनी विशाल परम्परा में स्थित होकर सर्जना के लिए नये आकार ग्रहण करता है। इस प्रकार कवि के लिए परम्परा एक स्रोत है जिससे वह अपने परिवेश को समझने, पहचानने का प्रयास करता है।

अज्ञेय जैसे आधुनिक कवि के लिए परम्परा एक समष्टिगत अनुभव है, कोई स्थिर या जड़पिंड नहीं। वह निरंतर विकासशील है। मानव का विवके भी विकासशील है। अतः

अज्ञेय परम्परा के आगे अपने विवके का समर्पण नहीं करते हैं बल्कि वे परम्परा के स्वरूप को अपने विवके से विकसित करना चाहते हैं। "अज्ञेय में रचना और संवेदना, भारतीयता और आधुनिकता का द्वंद्व निरंतर सक्रिय रहा है। इस सक्रियता ने संवेदता का खुलापन दिया और सर्जनात्मकता के प्रति गहन उन्मोचन का भाव। उनके विचार से उस सृजन–कर्म की कोई प्रतिष्ठा नहीं हो सकती, जिसमें सांस्कृतिक अस्मिता नहीं बोलती। हमारी सांस्कृतिक अस्मिता ही व्यक्तित्व एवं अस्तित्व का निर्माण करती है। सांस्कृतिक अस्मिता का आग्रह प्रसाद–निराला में कम नहीं रहा। चिंतन के स्तर पर प्रसाद इस क्षेत्र में अग्रणी हैं। अज्ञेय के मन में सर्वाधिक आकर्षण अगर किसी रचनाकार के लिए है तो– अज्ञेय के प्रति। साहित्यिक परंपरा में अज्ञेय ही प्रसाद के सच्चे उत्तराधिकारी कहे जा सकते हैं। नयी कविता के कवि–आलोचक एवं सिद्धांतकार विजयदेव नारायण साही ने कहा है कि 'तारसप्तक' में संगृहीत अज्ञेय एवं उनके साथियों ने 'राहों का अन्वेषी' अपने को घोषित कर उस 'क्राइसिस' का सामना किया, जिसे छायावाद की मनोभूमिका ने पैदा किया था।"[6] अपने से पूर्ववर्ती काव्य–परम्परा को व्यापक बनाना कवि का दायित्व होता है। इस दायित्व का निर्वाह करके ही वह अपनी परम्परा के ऋण से उऋण हो सकता है। इस सन्दर्भ में परम्परा के समर्थन कवि इलियट की मान्यता पर विचार करना अपेक्षित है। इलियट परम्पर के विकास को वर्तमान से जोड़कर देखने पर बल देते हैं क्योंकि बिना वर्तमान से जुड़े परम्परा का विकास भी असम्भव है। उनके शब्दों में, "But the difference between the presents and the past is that the conscious present is an awareness of the past in a way and to an extent which the past's awareness of itself cannot show."[7] अज्ञेय भी परम्परा प्रदत्त संस्कारों को स्वीकार करते हैं और कहते हैं– ''नदी तुम बहती चलो/भूखंड से जो दाय हमको मिला है, मिलता रहा है/मांजती, संस्कार देती चलोः/यदि ऐसा कभी हो तुम्हारे आहलाद से/या दसरों के किसी स्वैराचार से–/अतिचार से/तुम बढ़ो/प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे,/यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा घोर/काल–प्रवाहिनी बन जाय/तो हमें स्वीकार है वह भी/उसी में रेत होकर फिर छनेंगे हम/जमेंगे हम/कहीं फिर पैर टेकेंगे/कहीं फिर भी खड़ा होगा नये व्यक्तित्व का आकार/मातः,उसे फिर संस्कार तुम दूना।''[8]

अज्ञेय अपनी कविताओं में इस तथ्य पर हमेशा बल देते हैं कि नया अनुभव पुराने को मिटाता नहीं है, इसमें जुड़कर उसे नयी परिपक्वता प्रदान करता है। 'नया कविः आत्मस्वीकार' कविता में कहते हैं– "किसी का सत्य था, मैंने संदर्भ से जोड़ दिया।/कोई मधुकोप कांट लाया था, मैंने निचोड़ लिया।/किसी का उक्ति में गरिमा थी, मैंने उसे थोड़ा सँवार दिया,/किसी की संवेदना में आग का–सा ताप था,/मैंने दूर हटते–हटते उसे धिक्कार दिया।/कोई हुनरमंद था, मैंने देखा और कहा, 'यों।'/थका भारवाही पाया–घुड़का या कोंच दिया, 'क्यों?'/किसी की पौध थी, मैंने सींची और बढ़ने पर अपना ली,/ किसी की लगाई लता थी, मैंने दो वल्ली गाड़ उसी पर छवा ली।/ किसी की कली थी, मैंने अनदेखे में बीन ली,/किसी की बात थी, मैंने मुँह से छीन ली।"[9]

अज्ञेय परम्परा के क्षेत्र में इस तारतम्यता को अनिवार्य मानते हैं। इस प्रकार परम्परा के प्रति श्रद्धा रखते हुए भी आधुनिकता पर उनकी दृष्टि टिकी हुई है। यहाँ आकर पुनः वे इलियट के विचार से साम्यता रखते हैं। इस विषय में डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि ''इन मान्यताओं के सन्दर्भ में अज्ञेय और इलियट की समानता बार–बार उभरकर आती है। अपने–अपने साहित्यों में दोनों से गैर रोमाण्टिक कविता का आरम्भ होता है, दोनों परम्परा से आक्रान्त न होकर उसका उपयोग करना चाहते हैं, और दोनों भोगने वाले प्राणी और रचने वाली मनीषा के पृथकत्व में विश्वास रखते हैं। व्यापक रूप से साहित्य को आधुनिक बनाने में इन दोनों का योग अन्यतम है।''[10] "हिंदी साहित्य–चिंतन में 'परंपरा' और 'आधुनिकता' को एक अवधारणा के रूप में विकसित करने का श्रेय अज्ञेय जी को है। उन्होंने परंपरा को 'जाँचने' और 'परखने' की एक ईमानदार बौद्धिक पहल इस अर्थ में की है कि हम परंपरा को कोरी पूजा की वस्तु मानकर नहीं जी सकते हैं। कई बार परंपरा केवल परंपरावादी रूढ़ि का पर्याय होती है, जो नए विचार–संदर्भो से हमें काटकर जड़ और ठस्स बनाती है। परंपरा में जड़ता का अर्थ तब पैदा होता है जब हम उसे 'परंपरावाद' के लीकी अर्थ में ग्रहण करते हैं।"[11] अज्ञेय परम्परा को एक ऐसे साधन के रूप में स्वीकार करते हैं जिससे कवि को आचार का अनुशासन मिलता है। चूकि परम्परा साधना है इसलिए यह निष्ठा, आस्था और विवके से अर्जित करनी पड़ती है। निष्ठा, आस्था और विवके से अर्जित की गयी परम्परा के प्रति अज्ञेय समर्पित हैं। इसलिए आश्वस्त होकर वे कहते हैं–''तुम्हीं ने दिया यह स्पन्द/तुम्हीं ने धमनी में बाँधा लहू का वेग/यह मैं अनुक्षण जानता हूँ/गति जहाँ सब कुछ है, तुम धृति पारमिता/जीवन के सहज छनद/तुम्हें पहचानता हूँ/माँगों तुम चाहे जोः मांगोगे, दुंगा/तुम दोगे जो, मैं सहूंगा''[12] इस प्रकार कवि आश्वस्त होकर परम्परा को ग्रहण करने के लिए तैयार है और उसके प्रति समर्पित होने के लिए तत्पर भी है। अज्ञेय निःसंकोच भाव से परम्परा के दाय को स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि परम्परा ही कहीं–न–कहीं स्पन्दन का स्रोत है, वही कवि के आंतरिक आवेग को साधती है।

अज्ञेय एक ओर जहाँ अपनी परम्परा का उपयोग करते हैं वहीं व भावी पीढ़ी के लिए एक अलग परम्परा का निर्माण भी करना चाहते हैं। यही कारण है कि वे अपने प्राचीन परम्परा से टकराते हैं, नये प्रयोग करते हैं, नयी दिशाएँ तलाश करने की कोशिश करते हैं। इसी सन्दर्भ में प्राचीन काव्यशास्त्रीय परम्परा से आमने–सामने होकर बातचीत करते हुए कहते हैं– ''आज तुम शब्द न दो, न दो/कल भी मैं कहूँगा...तुम्ही को रस देता हुआ/फूटकर मैं बहूँगा''[13] नयी दिशाएँ तलाश करने की कोशिश में कई बार वे बने–बनाये रास्ते पर नहीं चलते हैं, जहाँ उनकी अपनी कोई छाप नहीं पहचानी जा सके। इस सन्दर्भ में वे कहते हैं–''जिधर मैं चला/नहीं वह पथ थाः/मेरा आग्रह भी नहीं रहा मैं चलूँ उसी पर/सदा जिसे पथ कहा गया, जो/इतने–इतने पैरों द्वारा रौंदा जाता कि उस पर/कोई छाप नहीं पहचानी जा सकती थी''[14] परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वे परम्परा से बिलकुल कट जाना चाहते हैं। वे परम्परा के उस सोते से हमेशा जुड़े रहना चाहते हैं जहाँ कवि को जीवन के प्रखर एवं जीवन्त तत्त्व मिलते हैं। भावी पीढ़ी को नयी दिशा, नयी राह देने के क्रम में भी वे उन्हें आगाह करते चलते हैं कि परम्परा का उपयोग प्रयोगशील मानसिकता से करे। वे इस तथ्य पर बल देते है कि परम्परा–प्रयोग से पूर्व उसकी जाँच पड़ताल आवश्यक है। उनके शब्दों में– ''तू आ/तू देख कि यह पैरों की छाप पड़ी है जहाँ/कहीं वह/है सूना फैलाव रेत का जिसमें/कोई प्यासा मर सकता हैः/बीहड झारखंड है कहीं, कंटीली/जिसकी खोहों में कोई बरसों तक चाहे भटक जाय/कहीं मेंड़ है किसी परायी खेती की, मुड़ कर ही/जिसके अगल–बगल से कोई गलियारा पा लेना

होगा/कहीं कुछ नहीं, चिकनी काली रपटन जिसके नीचे/एक कुलबुलाती दलदल है/झाग भरा मुँह बाये, घात लगाये/किन्तु प्यास से भरा नहीं मैं/मलियारे भी/चाहे जैसे मुझे मिलेः/दलदल में भी मैं डूबा नहीं''[15]

अज्ञेय होने का अर्थ है अपने समाज की सर्जनात्मकता को पहचानना और उसे पुनसृजित करना। इस हेतु वे अपने समाज व संस्कृति की परंम्परा को सहजता से स्वीकार करते हैं ताकि उन परम्पराओं के अवलोकनोपरांत नई चेतना का मिश्रण करते हुए उन्हें पुनःसृजित किया जा सके। नवसृजन के पुरोधा कवि अज्ञेय कभी–कभी परम्परा को छोड़कर नई लीक बनाते हुए आगे बढ़ते हैं परन्तु इसका यह अर्थ बिलकुल नहीं लगाया जा सकता के वे परम्परा के विरूद्ध थे। वास्तव में उनका काव्य परम्परा के ग्रहण और त्याग के द्वंद्व में घूमना रहता है। वस्तुतः उनके चिंतन के केन्द्र में रही है आधुनिक मानव की स्वाधीनता और सर्जनात्मकता। इसी चिंतन के वशीभूत होकर कवि परंपरागत काव्य–लय को छोड़कर गद्य की लय को अपनाया और वक्तृता में वैशिष्ट्य की निष्पति की। वस्तुतः 'परम्परा' अज्ञेय के लिए रचना कर्म में समस्या बनी रही है। इसका कारण यह है कि परम्परा को परखे बिना उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। कवि अपने बुद्धि–विवेक अर्थात् वैयक्तिक चेतना द्वारा परम्परा का अध्ययन करता है और उससे प्राप्त अनुभव को अपनाता है। अज्ञेय ने इस सन्दर्भ में तर्कपूर्ण ढंग से यह माना है कि परम्परा रचनाकार के लिए शापमय वरदान है। शापमय इसलिए कि इससे व्यक्ति पूर्णतः मुक्त होकर बचा नहीं रह सकता है, और वरदान इसलिए कि परम्परा के विवेकपूर्ण अध्ययन से नये विचारों का प्रस्फुटन होता है, व्यक्ति परम्परा के अध्ययन से बहुमूल्य अनुभव प्राप्त कर सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. पालीवाल, कृष्णदत्त(सम्पादक), 'अज्ञेयः कवि–कर्म का संकट', नयी दिल्लीः किताबघर प्रकाशन, संस्करण–2009, पृष्ठ–7.
2. पालीवाल, कृष्णदत्त(सम्पादक), 'अज्ञेयः कवि–कर्म का संकट', पृष्ठ–9.
3. अज्ञेय रचनावली, खण्ड–1, पृष्ठ–302
4. अज्ञेय रचनावली, खण्ड–1, पृष्ठ–256
5. अज्ञेय रचनावली, खण्ड–1, पृष्ठ–256
6. पालीवाल, कृष्णदत्त(सम्पादक), 'अज्ञेयः कवि–कर्म का संकट', पृष्ठ–13.
7. Ajney, Selected essays, page.16
8. अज्ञेय रचनावली, खण्ड–1, पृष्ठ–303
9. पालीवाल, कृष्णदत्त(सम्पादक), 'अज्ञेयः कवि–कर्म का संकट', पृष्ठ–31
10. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृष्ठ–78
11. पालीवाल, कृष्णदत्त(सम्पादक), 'अज्ञेयः कवि–कर्म का संकट', पृष्ठ–43.
12. अज्ञेय रचनावली, खण्ड–1, पृष्ठ–323
13. अज्ञेय रचनावली, खण्ड–1, पृष्ठ–323
14. अज्ञेय रचनावली, खण्ड–2, पृष्ठ–55
15. अज्ञेय रचनावली, खण्ड–2, पृष्ठ–78